International Journal of Hindi Research
ISSN: 2455-2232; Impact Factor: RJIF 5.22
Received: 21-06-2019; Accepted: 22-07-2019
www.hindijournal.com
Volume 5; Issue 5; September 2019; Page No. 41-43

अस्मिता का विकासः अवधारणा, और संदर्भ

डॉ. शहजाद आलम
Phd, (Hindi) from Jnu, New Delhi, India

प्रस्तावना

अस्तित्व और अस्मिताः ये दो ऐसे प्रश्न हैं जो मनुष्य के चिंतन के बहुत व्यापक हिस्से पर हावी रहे हैं। एक जैसे दिखने वाले इन प्रश्नों में पर्याप्त भिन्नता है। अस्तित्व का प्रश्न बुनियादी तौर पर दर्शन के क्षेत्र का प्रश्न है जबकि अस्मिता के प्रश्न के सामाजिक आयाम प्रमुख होते हैं. अस्तित्व का प्रश्न विश्व में उसकी मौजूदगी और भूमिकाओं के प्रश्न से जुड़ा हुआ है। अपने इस अस्तित्व की खोज और समझ को हासिल करने के लिए मनुष्य हमेशा से ही जूझता रहा है। कभी मनुष्य इस सवाल का हल पाने के लिए अपने और प्रकृति के संबंध को व्याख्यायित करने का प्रयास करता है तो कभी एक परमसत्ता की परिकल्पना करते हुए उसके साथ अपने संबंध को परिभाषित करने की कोशिश करता है। अस्तित्व का संबंध बुनियादी किस्म के प्रश्नों से है। यह सवाल मनुष्य के अपने अस्तित्व की खोज से जुड़ा हुआ है कि मैं कौन हूँ? कहाँ से आया हूँ? धरती पर मेरे आने का उद्देश्य क्या है? ऐसे न जाने कितने सवालों से मनुष्य जूझता रहा है और इन सवालों की तरह–तरह से व्याख्या भी देता रहा है।

अधिकतर इन सारे सवालों के जवाब की तलाश मनुष्य दो दृष्टिकोणों से करता रहा है। या यह भी कह सकते हैं कि दो दृष्टिकोण हैं जिसमें व्यक्ति अपने और संसार के संबंध को समझने का प्रयास करता रहा है। पहला दृष्टिकोण आध्यात्मिक दृष्टिकोण है जिसके तहत मनुष्य संसार को मिथ्या समझता रहा है और अपने 'स्वयं' को ईश्वर का एक अंश समझता रहा है। इस संसार को उसने माया का नाम दिया जो उसे ईश्वर से मिलने में बाधा उत्पन्न करता है। जबकि मनुष्य का इस धरती पर आने का उद्देश्य ईश्वर को प्राप्त करने के रहस्य या मार्ग को जानना और उसे प्राप्त करना है। ऐसे दृष्टिकोण के नतीजे में नियतिवाद का विकास हुआ, जिसके तहत मनुष्य जैसा है और जैसा हो रहा है, उसे भाग्य और नियति के माध्यम से देखने की कोशिश करता है और कोई संघर्ष करने की जरूरत नहीं समझता।

दूसरा दृष्टिकोण भौतिकवादी दृष्टिकोण है जिसके तहत इस संसार को मिथ्या नहीं भौतिक वास्तविकता माना जाता है। इसमें मनुष्य के होने में प्रकृति की भूमिका को देखा जाता है और इस संसार के बनने और मनुष्य के अस्तित्व को एक प्रक्रिया में समझने का प्रयास किया जाता है। इस दृष्टिकोण के तहत ईश्वर की अवधारणा पर सवाल खड़े किए जाते हैं। भौतिकवादी दृष्टि से एक वैज्ञानिक दृष्टिकोण विकसित होता है जो समाज को उसकी गति या द्वंद्व में समझता है।

समाज के विकास की हरेक अवस्था में, उस अवस्था की विशिष्टताओं के तहत संसार को और स्वयं को देखने के ये दोनों दृष्टिकोण मौजूद रहे हैं और विमर्श का विषय बने रहे। ज्ञान की परंपराओं ने भौतिकवादी दृष्टि को अपनाया और कई तरह के ज्ञानानुशासनों को विकसित किया।

अस्तित्व के विपरीत अस्मिता का मुद्दा मनुष्य के सामाजिक विकास से जुड़ा हुआ है। अस्मिता सामाजिक बनावटों, स्थितियों, गतिविधियों और प्रक्रियाओं का विषय है क्योंकि मनुष्य की अस्मिता का निर्धारण उसकी समाज में उपस्थिति से होता है। समाज में रहकर ही मनुष्य की अस्मिता बनती है। व्यक्ति की अस्मिता का मुद्दा एक ऐसा विषय रहा है जिसने हमेशा से मनुष्य पर अपना प्रभाव बनाए रखा है। अस्मिता मनुष्य की वह पहचान है जो कि वह समाज में अर्जित करता है किसी व्यक्ति की अस्मिता वह है जिससे वह अपने को पहचानता है और अपनी उस पहचान को समाज द्वारा पहचाने जाने की वकालत करता है। यानी कोई व्यक्ति खुद को किसी अस्मिता से जोड़ कर देखता है और समाज से अपने को उसी अस्मिता से जोड़ कर देखे जाने की अपेक्षा करता है। आज के समय में यह एक बेहद विवादित शैक्षणिक विषय बना हुआ है।

अस्मिता के संबंध में जो भी पुरानी मान्यताएँ थीं वह अब बदल रही हैं या कहें कि वह अब निश्चित हो अपना रूप पा रही हैं। अस्मिता को आज हम कई संदर्भों में देखते और समझते हैं। अकादमिक विमर्शों से हमें अस्मिता के महत्व और उसके सामाजिक तथा सांस्कृतिक बदलावों का भी पता चलता है। दरअसल अस्मिता का विमर्श वंचित समुदायों का विमर्श है, जिन्होंने समाज में अपनी अस्मिता के लिए संघर्ष किया है। इसी विमर्श के तहत वंचित अस्मिताओं के संघर्ष और मजबूत हुए, उन्होंने ऐतिहासिक आधार पर अपने को खोजने का प्रयास किया और खुद को खड़ा किया। ऐसे में विद्वानों द्वारा अस्मिता को कई तरह से परिभाषित किया गया और समझने का प्रयास किया गया। आगे हम अस्मिता के विभिन्न आशयों और अर्थों को समझने का प्रयास कर रहे हैं।

अस्मिता का अर्थ एवं आशय

शब्दकोशों के आधार पर, अस्मिता मन का वह भाव या मनोवृत्ति है जिसके तहत एक व्यक्ति अपनी पृथक और विशिष्ट सत्ता का दावा करता है। यानी वह अपने होने का दावा करता है। यह एक किस्म का अहं–भाव, निजत्व का भाव है, अपने होने की चेतना है, अपनी सत्ता का भाव है, जो अंतिम तौर पर अपनी पहचान के रूप में अभिव्यक्त होता है।

शब्दकोशीय सीमाओं से परे, अकादमिक जगत में अस्मिता को कई तरह से परिभाषित करने और उसके अर्थ को समझने का प्रयास किया गया है। व्यापक समझ के अनुसार, अस्मिता से सामूहिकता का बोध होता है। निजत्व और सामूहिकता दोनों के द्वंद्व की मौजूदगी ही अस्मिता की एक ऐसी समझ तक पहुंचने में उलझन पैदा करती है, जिस पर सबकी सहमति हो। ऐसे में अस्मिता को किन अर्थों में देखा जाए या किस तरह की अस्मिता कौन से बोध के साथ जुड़ती है, यह एक अहम सवाल बनता है। इस आधार पर दर्शन और विचारधाराओं के प्रभाव वे अहम कारक हैं जो इसके विश्लेषण में मदद करते हैं। इसके विकास क्रम के जरिए इसे समझना बेहतर होगा।

विचारधारों के विकास की एक प्रक्रिया रही है। वैश्विक स्तर के विमर्शों ने स्थानीय मानकों के आधार पर अपने को नया स्वरूप प्रदान किया। परंतु विकास की इस ऐतिहासिक प्रक्रिया को हमें

वहाँ से समझने की जरूरत है जहां से उस दृष्टि का उभार हम देखते हैं। इस लिहाज से वैश्विक स्तर पर अस्मिता का विमर्श उन विमर्शों के साथ जुड़ा हुआ है जिन्होंने क्रमिक तौर पर ऐसे विमर्शों की संभावनाओं को जन्म दिया। अस्मिता विमर्श एक आधुनिक विचार है जो आधुनिकीकरण की प्रक्रिया के दौरान सिद्धान्त के रूप में सामने आया है। आधुनिकता के साथ कुछ लोकतांत्रिक मूल्य भी जुड़े हुए हैं, जो मनुष्य को समान अधिकार और समान सम्मान देने की वकालत करते हैं। इनसे लोगों में समानता और आत्मसम्मान की धारणा को मजबूती मिली तथा लोकतांत्रिक चेतना विकसित हुई। इस आधुनिक और लोकतान्त्रिक चेतना ने मनुष्य को न केवल एक निजी रूप में उसकी पहचान और अस्तित्व के लिए चेतनशील बनाया बल्कि अपनी एक सामूहिक पहचान और अस्तित्व के प्रति भी सजग बनाया।

चेतना के इस विकास ने इस तथ्य के प्रति ध्यान आकर्षित किया कि समाज में सभी मनुष्यों के पास वास्तव में समान अधिकार नहीं हैं, कुछ लोग दूसरे मनुष्यों का शोषण करते है और सारे संसाधनों पर केवल कुछ लोगों का ही कब्जा है। इससे यह सजगता और समझ विकसित हुई कि क्यों कुछ लोगों को हीन समझा जाता है और कुछ लोगों को श्रेष्ठ, क्यों कुछ लोग ऊंचे समझे जाते हैं और कुछ लोग नीचे समझे जाते हैं?

विभिन्न विचारधाराओं और दर्शनों के तहत इन सवालों के जवाब खोजने के प्रयत्न किए गए. उनमें सबसे प्रभावशाली और व्यापक जवाब मार्क्सवादी दर्शन ने तलाशने की कोशिश की। इसके तहत, भौतिक स्थितियों पर आधारित विश्लेषण ने मनुष्य को उसकी एक वृहद अस्मिता के साथ जोड़ कर देखने की समझ प्रदान की है। यह मनुष्य की व्यक्तिगत अस्मिता की जगह, एक सकारात्मक सामूहिक पहचान को प्राथमिकता दी है, जिसे वर्ग के रूप में परिभाषित किया गया है। शोषक और शोषित दो ऐसे व्यापक वर्ग हैं, जो अलग अलग अस्मिताओं की पहचान बनते हैं। मार्क्सवाद के अनुसार, अस्मिता और आत्म निर्माण मुख्यतः पूंजीवाद की समस्याएँ हैं।

मार्क्स ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक The Economic and Philosophic Manuscripts of 1884 में अलगाव की अवधारणा पर विस्तार से विचार किया है। मार्क्स के अनुसार अलगाव का मूल पूंजीवाद में है। यहाँ पूंजीपति अपनी पूंजी से श्रमिक के श्रम का शोषण करता है, मजदूरी के बदले वह उसकी उत्पादन क्षमता को खरीदता है। अतः इस व्यवस्था में श्रमिक का श्रम उसका अपना नहीं रहता क्योंकि वह उस श्रम को अन्य के लिए करता है। अतः यहाँ श्रम प्रक्रिया से अलगाव और परायापन पैदा होता है। मार्क्सवादी दर्शन में मजदूर वर्ग के पूंजीवाद के विरुद्ध सक्रिय होने वाली वर्ग चेतना अस्मिता की खोज कही गई। डॉ. रामविलास शर्मा पूंजीवादी व्यवस्था में मजदूर और पूंजीपति की बदलती हुई अस्मिता को व्याख्यायित करते हुए कहते हैं, "पूंजीवादी व्यवस्था में मजदूरों के हाथ से उत्पादन के साधन छिन जाते हैं, वे श्रमशक्ति बेचने पर मजबूर होते हैं। पूँजीपतियों की स्थिति ठीक इसके विपरीत होती है। वे उत्पादन के साधनों के मालिक बन जाते हैं, मजदूरों की श्रमशक्ति खरीदकर अतिरिक्त मुनाफा कमाते हैं किन्तु अलगाव के शिकार सभी वर्गों के लोग होते हैं। मजदूरों की अस्मिता का लोप इस हद तक होता है कि वे सर्वहारा बन जाते हैं और पूंजीपतियों की अस्मिता का लोप इस हद तक होता है कि वे मजदूरों की पैदा की हुई दौलत के मालिक बन जाते हैं। जो अस्मिता व्यक्ति के स्तर पर लुप्त होती है वह पुनः प्राप्त होती है वर्ग की अस्मिता के रूप में।"[1] अतः दर्शन के अनुसार व्यक्ति की स्वयं की मौलिक स्वतन्त्रता महत्वपूर्ण अर्थ रखती है परंतु सामूहिक अस्मिता उसे एक वृहद समूह से जोड़ती है।

वास्तव में अस्मिता का प्रश्न संकट की प्रकृति पर निर्भर करता है। देखा जाए तो मनुष्य जन्म से ही अपने को बंधनग्रस्त पाता है और विविध बंधनों से उसकी मुक्ति का प्रयास और संघर्ष ही उसकी अस्मिता द्योतक है। इस तरह से मार्क्सवादी दर्शन एक बृहद अस्मिता को निर्मित करता है जो वर्गीय आधार पर एक वैश्विक और बड़ा विभाजन खड़ा करती है। इस आधार पर वर्गीय अस्मिता पहचान के तौर पर सबसे बड़ी अस्मिता के रूप में सामने आती है।

इसके बरअक्स यह विचार भी पेश किया जाता है कि अस्मिता का प्रश्न तभी उत्पन्न होता है जब बाह्य शक्तियों की प्रबलता अथवा दबाव के कारण मनुष्य के लिए अपने अस्तित्व को बनाये रखना कठिन हो जाय। अपने अस्तित्व अथवा सत्ता के प्रति जागरूक होना दृ यह विशिष्ट मनोवृत्ति सृष्टि के बौद्धिक प्राणी मनुष्य में ही है और वह हर बार अपनी बुद्धि और विवेक द्वारा प्रतिकूल स्थितियों–परिस्थितियों से जूझते हुए अपनी पहचान बनाये रखने का निरंतर प्रयास करता है। दर्शन और विचारों के इस द्वंद्व को और बेहतर तरीके से समझने के लिए यह देखना जरूरी हो जाता है कि अस्मिता को विद्वानों ने किस तरह से परिभाषित किया है। यहाँ हम कुछ पाश्चात्य विद्वानों के द्वारा दी गई परिभाषाओं के जरिए अस्मिता को समझने की कोशिश करेंगे। हाग और अब्राहम के अनुसार, "अस्मिता लोगों की वह अवधारणा है जो यह बताती है कि वे कौन हैं, किस तरह हैं, और वे दूसरों से कैसे संबन्धित हैं।"[2] इस आधार पर यह देखा जा सकता है कि अस्मिता उनकी एक ऐतिहासिक पहचान और उनके स्व की पहचान के साथ एक सामुदायिक पहचान को निर्मित करती है। एक ऐसा बोध जो अन्य से अलग करता हो और एक समुदाय विशेष में एकात्मता को विकसित करता हो। इसी आशय को नए शब्दों में रखते हुए डेंग ने कहा है कि, "अस्मिता व्यक्ति या समूह को जाति, भाषा, धर्म, और संस्कृति के आधार पर परिभाषित करने का तरीका है।"[3] यानी इसके जरिए एक व्यक्ति को अर्थवत्ता भी मिलती है। भाषायी विशिष्टता, धर्म की विशिष्टता या फिर संस्कृति, भाषा और जाति के आधार पर जब कोई सामूहिक पहचान बनती है तो वह अस्मिता का आधार होती है। काजेंस्टेन के अनुसार, "वर्तमान में अस्मिता अपने तथा अन्य के बारे में पारस्परिक रूप से निर्मित और विकसित छवि है।"[4] काजेंस्टेन अपनी परिभाषा के जरिए स्व की निर्मिति को अन्य के बरअक्स खड़ा कराते हैं। एक व्यक्ति, समूह या समुदाय तभी उभर कर आता है जब दूसरा व्यक्ति, समूह या समुदाय उसके समानान्तर हो।

ऐरिक ऐरिक्सन अस्मिताबोध को स्पष्ट करते हुए कहते हैं– "अस्मिता के बोध का मतलब किसी व्यक्ति के खुद के होने के बोध से है, जब कि वह बड़ा और विकसित हो रहा होता है और इसी दौरान उसका अर्थ समाज के उस अस्तित्व बोध से, खुद के बोध को जोड़ना भी होता है जिससे कि उस समाज का इतिहास या मिथक निर्मित होता है और जिससे भविष्य जुड़ा होता है।"[5] ऐरिक अस्मिता के बोध को उस व्यक्ति के समुदाय के इतिहास से जोड़ने का प्रयास करते हैं। जिसमें वह इतिहास के लंबे काल में अपने और अपने समुदाय के साथ एक संबंध को जोड़ता है और अपने को अन्य समुदायों से अलग चिह्नित करता है। इसके साथ उसे अपने मिथकों की भी तलाश करनी पड़ती है। अपने एक अन्य लेख में इसे और व्याख्यायित करते हुए ऐरिक्सन कहते हैं– "अस्मिता, किसी समाज के खास इतिहास द्वारा पोषित विशेष मूल्यों से व्यक्ति विशेष के जुड़ाव को चिह्नित करती है। अस्मिता, इस विशेष वैयक्तिक विकास से अत्याचारियों को भी जोड़ती है। यह किसी व्यक्ति के भीतर स्थित आत्मपन की प्रवृत्तियों और इसी प्रकार के दूसरों से व्यवहार के समय की प्रवृत्तियों दोनों को संकेतित करती है। इस प्रकार यह वैयक्तिक अस्मिता का चैतन्यबोध है, दूसरी ओर यह वैयक्तिक चरित्र की निरंतरता को बनाए रखने का अचेतन संघर्ष है। तीसरी बात, यह आत्म निर्माण

के खामोश प्रयास की कसौटी है और अंततः यह समाज के आदर्श और अस्मिता के साथ व्यक्ति की आंतरिक एक प्राणता का पोषण है।"[6]

हालांकि इन सब परिभाषाओं में अंतरविरोध मौजूद हैं फिर भी इन परिभाषाओं से हमें यह तो पता चलता ही है कि अस्मिता सबसे पहले खुद को पहचानने की प्रक्रिया से जुड़ी होती है। यह मन का वह भाव है जिसमें मनुष्य अपनी पहचान करता है, वह स्वयं को पहचानता है। इस पहचानने के क्रम में वह कुछ चीजों से अपने को जोड़ता तथा कुछ से अपने को अलग करता है। इसी क्रम में वह अपने और अन्य के बोध को भी विकसित करता है। वह अपने को व्यक्ति, समूह, जाति, धर्म, भाषा, संस्कृति के रूप में परिभाषित करता है।

एक मनुष्य कई अस्मिताओं से जुड़ा होता है या उसकी कई सारी पहचानें होती हैं। एक मनुष्य धर्म, जाति, लिंग, भाषा, क्षेत्र, वर्ग, राज्य, और राष्ट्र आदि कई अस्मिताओं से जुड़ा होता है। परंतु कौन सी पहचान कब उभरेगी यह समय और स्थान पर निर्भर करता है। हम अलग–अलग संदर्भों में अलग–अलग पहचान का प्रयोग करते हैं। जब हम किसी से उसका नाम पूछते हैं तो असल में हम उसकी पहचान उसकी अस्मिता को जानने की कोशिश कर रहे होते हैं। नाम के साथ उसकी धर्म, जाति आदि की अस्मिता भी कई बार जुड़ी होती है। इसी तरह, किसी व्यक्ति के क्षेत्र के बारे में जानने का मतलब उसकी क्षेत्रीय अस्मिता के बारे में पता करना हो सकता है। इस तरह एक व्यक्ति की अस्मिता से ही दूसरे व्यक्ति का जुड़ाव और अलगाव तय हो जाता है।

यह मनुष्य के विशिष्ट समाज के भीतर के समाजीकरण का हिस्सा होता है कि वह अपने विभिन्न खाने या कॉलम या ब्लॉक बना लेता है और जिसमें वह अपने करीब और दूर के लगाव के हिसाब से लोगों को वरीयताक्रम के अनुसार रखता है। जो उसकी अस्मिता से जितना ज्यादा जुड़ा होता है वह उस व्यक्ति के ज्यादा नजदीक के खाने में होता है और जो उसकी अस्मिता से नहीं जुड़ा होता तो वह दूर के खाने में होता है।

अस्मिता व्यक्ति के लिए आस्था और गौरव का भी प्रतीक है, क्योंकि इसी के द्वारा 'मैं हूँ' की प्रतीति सार्थक होती है। व्यक्ति के लिए सबसे अधिक अस्मिता की तड़प अपनी संस्कृति, साहित्य, भाषा तथा अपने जातीय गौरव के लिए होती है। इसलिए यह व्यक्ति के होने के बोध की सार्थकता को व्यक्त करने वाला शब्द है। इस तरह हम देखते हैं कि अपनी पहचान की प्रक्रिया में अस्मिता की आवश्यकता खड़ी होती है इस अस्मिता में जहां अपनी अलग पहचान होती है वहीं इस पहचान की वजह से दूसरों से अलग होने की प्रक्रिया भी निहित होती है। इस अलग होने में विभिन्न अस्मिताओं में आपसी टकराहट भी खड़ी हो जाती है क्योंकि पहचान की प्रक्रिया में दूसरों से अलग होना पड़ता है। क्योंकि जब अपनी पहचान का सवाल आता है तो उसमें दूसरे से अलग होने की प्रवृत्ति भी विद्यमान रहती है क्योंकि अलग हुए बिना अपनी पहचान संभव नहीं है।

Refrences

1. डॉ॰ रामविलास शर्मा, नयी कविता और अस्तित्ववाद, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1993, पृष्ठ–211
2. "Identify is people's concepts of who they are, of what sort of people they are, and how they relate to others" Hogg. Michael and Dominic Abraham (1988), Social Identification: A Social Psychology of Intergroup Relations and Group Process, London Routledge, Page no. 2
3. "Identity is the way individuals and group defined by other on basis of race, ethnicity, religion, language and culture." Jenkins, Richard (1996), Social Identity, London : Routledge, Page no. 4
4. "The term [Identity] (by convention) references mutually constructed and evolving images of self and other"
   Katzenstein, peter, ed. (1996) The Culture of National Security : Norms and Identity in world Politics New York : Columbia University Press, Page no. 6
5. "A sense of identity means a sense of being at one with oneself as one grows and develops, and it means at the same time, a sense of affinity with community's sense of being with its future as well as its history or mythology" Erik Erikson, Dimensions of New Identity, New Delhi, Light and life publishers, 1975 Page no. 27-28
6. "Identity points to an individual links with the unique valves, fostered by a unique history of his people. Identity also relates to the cornerstone of his individual's unique development. Identity expresses a mutual relation. It cannot both a persistent sameness within oneself (self sameness) and a persistent sharing of same kind of essential characters with other. At the same it is conscious sense of individual identity, at another it is an unconscious starving of a continuity of a personal character. At third, it is criterion for the silent doing of ego synthesis, and finally it is a maintenance of an inner solidarity with group's ideal and identity."
   Erik h Erikson, The problems of Ego Identity and Anxiety, ed. Arthur vidich stein and David white, NewYork, The Free Press 1960, Page no. 38